ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 117-121

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

भारतीय संगीत में ताल की अवधारणा

डॉ0 ब्रजरानी शर्मा

एसो0 प्रोफेसर– विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, श्री टीकाराम कन्या महाविद्यालय, अलीगढ़ (उ0प्र0) भारत

Received-17.07.2022, Revised-23.07.2022, Accepted-28.07.2022 E-mail: brajrani@gmail.com

सारांशः – स्वर, ताल और पद संगीत के तीन तत्व हैं। "स्वर संगीत जगत् का स्पंदन है जिसके अभाव में संगीत का जीना व्यर्थ है। ताल संगीत जगत् का मानसिक ऊहापोह है तथा पद संगीत का पाद सज्जा है। जिस प्रकार कितना ही सुन्दर शरीर क्यों न हो, किन्तु पैर के अभाव में वह चल–फिर नहीं सकता है, उसी प्रकार से स्वर और ताल के सापेक्ष रहने पर भी पद के बिना वे पंगु तथा बधिर है।

कुंजीभूत शब्द– स्वर, ताल, पद, संगीत, स्पंदन, मानसिक, पाद सज्जा, अभाव, सापेक्ष, पंगु तथा बधिर, परमात्मा, स्वर।

मानव जीवन के साथ ही संगीत की उत्पत्ति का इतिहास संबद्ध है। इसकी उत्पत्ति का आधार ध्वनि या नाद है। नाद के बिना संगीत का अस्तित्व नहीं है। मतंग मुनि ने लिखा है–

" न नादेन बिना गीतं न नादेन– बिना स्वरः।
न नादेन बिना नृत्तं तस्मान्नादात्मकं जगत्" ।।
बृहद्देशी श्लो017

हमारी अन्तरात्मा या चेतना का उस नाद–ब्रह्म से सहज स्वाभाविक सम्बन्ध रहता आया है क्योंकि आत्मा को परमात्मा का अंश माना गया है। यह नाद–ब्रह्म ही संगीत की लयबद्ध धारा बनकर हमारे जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है। इसी नाद से स्वर तथा शब्द (भाषा) का विकास हुआ अतः नाद ही संगीत का उद्‌गम स्थल है। यथा–पत्थर को काट कर तथा तराशकार मूर्ति, रंगों से चित्र तथा ईंट, चूने आदि से भवन का निर्माण होता है। वैसे ही नाद से संगीत की सृष्टि होती है। विभिन्न विद्वानों ने संगीत उत्पत्ति के अनेक आधार माने हैं:–

मनोवैज्ञानिक आधार, धार्मिक आधार, प्राकृतिक आधार आदि। कुछ विद्वानों का मत है कि संगीत की उत्पत्ति में पशु–पक्षियों की विभिन्न ध्वनियों का योगदान है। दामोदर पंडित के अनुसार संगीत के सात स्वरों का आविर्भाव सात–विभिन्न पशु पक्षियों की ध्वनियों द्वारा हुआ है–

" षड्जं वदति मयूरः पुनः स्वरऋषभं चातको ब्रूते।
गांधाराख्यं छागो निगदन्ति च मध्यमं क्रौंचः।।
गदति पंचमंचितवाक् पिको रटति धैवतमुन्यदददुंररः।
शृणिसमाहतमस्तककुन्जरो गदतिनासिकायास्वर मंतिम्।।"
दमोदर प0 'संगीत दर्पण' श्लोक 170,171,पृष्ठ 70।

अर्थात् मोर षड्ज स्वर का, चातक ऋषभ का, बकरा गंधार का, क्रौंच मध्यम स्वर का, कोकिल पंचम स्वर का, मेंढक धैवत स्वर का तथा हाथी मस्तक पर अंकुश का आघात किये जाने पर अपनी नाक में से अन्तिम स्वर निषाद का स्वरोच्चारण करता है।

विभिन्न पशु–पक्षियों की ध्वनि के श्रवण के अतिरिक्त भी मानव ने संगीतमय वातावरण का अवलोकन करते हुए प्रकृति से उद्‌भूत विभिन्न मधुर ध्वनियों का श्रवण किया। उसे निर्झरों तथा सरिताओं की कलकल में, सागर की उठती–गिरती तरंगों में, नटखट पवन के मधुर झोकों में, वृक्ष के पल्लवों में, वर्षा की बूंदों में प्रस्फुटित हुई मधुर ध्वनि सुनाई दी। धीरे–धीरे मानव ने उनका अनुकरण करना प्रारम्भ किया इससे उसके जीवन में सरसता का समावेश हुआ और उसने इस सरसता को स्थिर रखने के लिए तथा मधुर प्राकृतिक ध्वनियों को और अधिक सुन्दर बनाने के लिए स्वरों का विचार किया। कहने का तात्पर्य है कि सांगीतिक ध्वनि का आदि स्त्रोत 'प्राकृतिक ध्वनि' ही है।

संगीतोत्पत्ति संबंधी विभिन्न आधारों का अवलोकन करने पर कहा जा सकता है कि संगीत की उत्पत्ति प्रकृति से हुई है। यदि गूढ़ता से विचार किया जाये संगीतोत्पत्ति का मूलाधार ईश्वर विरचित प्रकृति ही तो है क्योंकि नाद और गति संगीत के ये दो मुख्य तत्व हमें प्रकृति से ही प्राप्त हुये हैं। बस अतं र केवल इतना ही है कि प्रकृति में समाविष्ट 'नाद' और 'गति' को मानव ने अपनी बुद्धि से परिष्कृत तथा परिमार्जित रूप प्रदान किया और 'नाद' तथा 'गति' के परिष्कृत रूप 'स्वर' और 'लय' के रूप में प्रस्फुटित हुये।

संगीत में ध्वनि और लय का संयोजन अर्न्तनिहित भावों (अर्थों) को उजागर कर देता है। स्वर और लय ही संगीत

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

कला का संचालन कर रहे हैं 'स्वर' और लय' के व्यवस्थित रूप धारण करने पर जिस कला का प्रादुर्भाव होता है, वही संगीत है।[1]

ध्वनि तथा गति के मिश्रण से बने 'संगीत' में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों का समावेश है। संगीत की परिभाषा करते हुए आचार्य शारंगदेव ने लिखा है– 'गीत' वाद्यं तथा नृतंत्रय संगीतुमुच्यते'[2] दामोदर पण्डित ने भी संगीत की परिभाषा इसी प्रकार दी है– 'गीतं वाद्यं नर्त्तनश्च त्रयं संगीत मुच्यते'।[3] गायन, वादन तथा नृत्य परस्पर इस प्रकार घुल–मिल गये हैं कि संगीत कहने से तीनों का चित्र एक साथ नेत्रों के समक्ष उपस्थित हो जाता है।

स्वर, ताल और पद संगीत के तीन तत्व हैं। ''स्वर संगीत जगत् का स्पंदन है जिसके अभाव में संगीत का जीना व्यर्थ है। ताल संगीत जगत् का मानसिक ऊहापोह है तथा पद संगीत का पाद सज्जा है। जिस प्रकार कितना ही सुन्दर शरीर क्यों न हो, किन्तु पैर के अभाव में वह चल–फिर नहीं सकता है, उसी प्रकार से स्वर और ताल के सापेक्ष रहने पर भी पद के बिना वे पंगु तथा बधिर है''[4]

'ताल' संगीत का एक व्यापक विषय है, जिसके बारे में विद्वानों द्वारा विभिन्न विचार एवं तथ्यात्मक मीमांसाएँ प्रस्तुत की जा चुकी हैं। अतः भारतीय संगीत में ताल की अवधारणा एवं सिद्धान्तों का विवेचन सर्वप्रथम आचार्य भरत के 'नाट्यशास्त्र' में ही मिलता है, परन्तु उनका स्पष्टीकरण अभिनवगुप्त ने किया है। भरतानुवर्ती ग्रन्थ 'बृहद्दशेी', 'भरतभाष्य', संगीतशिरामे णि' आदि के तालाध्याय लुप्त बताए जाते हैं, परन्तु 'संगीतरत्नाकर', 'संगीतसमयसार', 'मानसाले लास', 'सगीं तचड़ामू मणि' एवं 'संगीतसूर्योदय' आदि ग्रन्थों में ताल–विषयक विशद विवेचन प्राप्त होता है।

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति तथा विवेचन, संगीत में ताल का महत्व एवं स्वरुप– संगीत अर्थात् गायन, वादन और नृत्य का अस्तित्व ताल के बिना असम्भव सा है। इसी कारण संगीत के प्रायः सभी ग्रन्थों में ताल तत्व का विवेचन आवश्यक तथा अभिन्न अंग के रुप में प्रस्तुत हुआ है। मकरन्दकार नारद ने 'ताल' शब्द की उत्पत्ति के विषय में इस प्रकार कहा है:–

ताल शब्दस्य निष्पत्तिः प्रतिष्ठार्थेनधातुना गीतं, वाद्यं च नृत्यं च भाति ताले प्रतिष्ठितम्।

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत भाषा की 'तल्' धातु में 'धञ्' प्रत्यय जोड़ने से हुई है, जहाँ 'तल' का अर्थ 'प्रतिष्ठार्थक' है। प्रतिष्ठा के दो अर्थ होते हैं– आधार और सम्मान। ताल के सन्दर्भ में ये दोनों ही अर्थ उपयोगी प्रतीत होते हैं। 'संगीत सूर्योदयकार' एवं 'संगीतरत्नाकर' ने गीत, वाद्य और नृत्य को ताल पर प्रतिष्ठित बताया है।[5] क्योंकि 'ताल' गीत, वाद्य और नृत्य को आधार तो पद्रान करता ही है, उसके सम्मान या प्रतिष्ठा में भी वृद्धि करता है। 'ताल' की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में यही अभिप्राय आचार्य शारंगदेव की इस उक्ति से भी व्यंजित है–

तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्धञि स्मृतः।
गीतंवाद्यं तथा नृत्यं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।। (संगीतरत्नाकर, 5/2अड्यार0)

अर्थात्–प्रतिष्ठा अर्थ वाली 'तल्' धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगाने से 'ताल' शब्द बनता है। गीत, वाद्य और नृत्य इसमें प्रतिष्ठित होते हैं। इसीलिए इसे 'ताल' कहा गया है। प्रतिष्ठा का अर्थ यहाँ न कवे ल गीत, वाद्य और नृत्य को निश्चित आधार एवं लय प्रदान करना है, बल्कि संगीत में रोचकता, सौन्दर्य एवं रंजकता आदि की वृद्धि करना भी है।

परिभाषाएँ–

प्राचीन विद्वानों के अनुसार–

(1) आचार्य भरत ने 'ताल' का लक्षण तो नहीं दिया है, परन्तु तालविधानाध्याय में उन्होंने इस शब्द का प्रयोग घन वाद्य के लिए किया हैं–

तालो घन इति प्रोक्तः कलापातलयान्वितः।
कालस्तस्य प्रमाणं वै विज्ञेयं तालयोक्तृभिः।। (नाट्यशास्त्र 31/1 चौखम्मा)

अर्थात्–ताल को 'घन' (वाद्य–विशेष) कहा जाता है, जो कला, पात और लय से अन्वित है अथवा कला, पात और लय में जिसका प्रयोग किया जाता है। काल या समय इसका प्रमाण हयै अर्थात् काल या समय को इससे मापा जाता है। यह ताल प्रयोक्ताओं द्वारा विज्ञेय है– अर्थात् इसकी जानकारी ताल प्रयोक्ताओं को होनी चाहिए। तालयोग से आशय यहाँ आवाप आदि क्रियाओं द्वारा मापा गया समय है। दोनों संगीत दर्पण में 'ताकार' से शंकर या शिव और 'लकार' से पार्वती या शक्ति का योग 'ताल' कहा गया है जो इस प्रकार है :

ताकारे शंकरः प्रोक्तो लकारे पार्वती स्मृता।
शिव शक्ति समायोगात्ताल नामाभिधीयते।।[6]

पार्श्व–देव विरचित संगीत–समयसार में ताल की निष्पत्ति के विषय में इस प्रकार कहा गया है–

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

तालशब्दस्य निष्पत्तिः प्रतिष्ठार्थेन धातुना।
सतालः कालमानं यत् क्रियया परिकल्पितम्7 ।।2।।

अर्थात्–प्रतिष्ठार्थक ('तल्' धातु से 'ताल' शब्द निष्पन्न हुआ है। यह ताल क्रिया के द्वारा परिकल्पित काल–मान है। यहाँ क्रिया का आशय काल–मापन में प्रयुक्त होने वाली सशब्द एवं निःशब्द क्रियाओं से है। कविवर निराला के विचार में 'संगीत' में 'ताल' एक रूढ़ शब्द है जो लयबद्धता का घोतक है।[8] निराला जी ने अपने काव्य में ताल शब्द का प्रयोग किया है–

"और देखूँगा देने ताल
करतल पल्लव–दल से
निर्जन वन के सभी तमाल"[9]

डॉ0 धर्मावती श्रीवास्तव के शब्दों में–'काल की नियमित गति जो कुछ नियमों से बद्ध होती है, वह ताल कहलाती है। ताल हाथ से भी एवं वाद्यों के माध्यम से भी दिया जाता है। इसका गायन, वादन, नृत्य तीनों में समान महत्वपर्णू स्थान है।'[10]

ताल, काल–मापक है और सांगीतिक क्रियाओं का आधार है। जिस प्रकार तल अथवा धरातल पर सृष्टि निर्भर रहती है। उसी प्रकार सांगीतिक सृष्टि तालाधारित है।[11]

"संगीतार्थव" ग्रन्थ में ताण्डव पुरूष नृत्य 'ता' तथा लास्य 'स्त्री' से 'ल' वर्णों के संयोग से ताल शब्द की व्युत्पत्ति दर्शायी गयी है।

ताण्डव स्यायद्यवर्णोन लकारो लास्य शब्दमाक्।
यदा संगच्छते लोके तदा तालः प्रकीर्तितः।।

नरहरि चक्रवर्ती कृत 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थ में निम्न श्लोक 'रत्नमाला' से उदधृत किया गया है। जिसके अनुसार 'त' कार शरजन्मा अर्थात् कार्तिकेय 'आ' कार विष्णु एवं 'ल' कार मारूत इन तीनों देवताओं द्वारा आधिष्ठित शब्द 'ताल' है।

तकारः शरजन्मा स्यादाकारो विष्णुरूच्यते।
लकारो मारूतः प्रोक्तस्ताले देवा वसन्ति ते।।

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति के सन्दर्भ में उपलब्ध ग्रन्थों में प्रायः एक ध्वनि ही प्रतिध्वनित होती पायी जाती है। गायन, वादन और नृत्य सभी में ताल की प्रतिष्ठा होने के कारण लयकारियों और जातियों का भी संगीत के क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान हो जाता है, क्योंकि संगीत में रंजकता और रसानुभूति उत्पन्न करने में इनका महत्वपूर्ण योगदान होता है।

वर्तमान संगीत के मूलाधार ग्रन्थ भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र में संगीत में सभी विधाओं के बीज रोपित किये गये है। जो कालान्तर में पलल्वित होकर वर्तमान में विकासरत हैं लय जो इस जगत की शाश्वत क्रिया है इसमें प्रतिष्ठित ताल तथा ताल में प्रतिष्ठित, गायन, वादन और नृत्य की परिकल्पना प्राप्त ग्रन्थों में से सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में ही विस्ततृ रूप से की गयी है।

ताल क्या है? संगीत रत्नाकार में ताल के विषय में कहा गया है–

कालो लघ्वादिमितया क्रियया सम्मितो मितिम्।
गीता देर्विदधत्तालः स च द्वेधा बुधैः स्मृतः।।
नाट्यशास्त्र चौखम्भा सं 31/2

अर्थात् लघु, गुरू, प्लुत, आदि सशब्द, निशब्द, स्वेच्छा कृत क्रियाओं से नियमित की गयी और गीत आदि को सीमाबद्ध करने वाला 'ताल' होता है।

संगीत–समय–सार में ताल का महत्व बताते हुए उदधृत किया गया है कि–

गीतं वाद्यं च नृत्यं च यतस्ताले विराजन्ते तस्मात्ताल स्वरूपं वक्ष्ये लक्ष्यानुसारतः।।[14]

अर्थात् गीतं, वाद्यं और नृत्यं ताल में वर्णनीय है। विराजित है अतः लक्ष्य के ताल का लक्षण वर्तमान संगीत में समय नापने के साधन को 'ताल' कहते है जो अनेक विभागों और मात्राओं से बनती है। अमर सिंह द्वारा लिखित अमरकोष में 'ताल की परिभाषा' ताल काल क्रियामानस् दी गयी है। मात्रायें ताल की इकाई हैं। वे केवल लय की गति का ही बोध कराती हैं। गायक, वादक और नर्तक इसकी सहायता से संगीत में लय की गति निश्चित करते हैय कि असीमित लय के सागर में न खो जाये। अतः गीतों आदि के लय में गूंजने के लिये, अगणित मात्राओं में कुछ विशेष संख्या की मात्राऐं लेकर उन्हें विभागों में बॉटकर, अवनद्ध वाद्यों पर प्रदर्शित करने के लिए स्थिति विशेष के अनुकूल सजाकर , ताल का निर्माण हुआ क्योंकि लय मात्रा

और ताल का समन्वित रूप ही संगीत में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इन तीनों का सम्बन्ध निम्नलिखित श्लोक में बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त किया गया है।

लय शोणित रूपेण, मात्रा नाड़ी स्वरूपतः।
घाताः अवयवाश्चैव तालौ वै पुरूषाकृतिः।।

अर्थात् ताल रूपी पुरूष का लय रक्त है, मात्रायें अनेक नाड़ियों के समान है और आघात 'बोल' अवयव है। ताल में निहित लय और लय की विभिवत गतियाँ लयकारी के रूप में प्रस्तुत होती है।

नाट्यशास्त्र में प्रथम अध्याय में वर्णित किया गया है कि भरतादि ऋषियों ने महादेव के सम्मुख जिस संगीत का प्रदर्शन किया उसे ' मार्ग संगीत एवं मार्ग संगीत में पंचमार्ग तालों के प्रयोग को मार्गताल की संज्ञा से विभूषित नहीं किया गया है किन्तु नाट्यशास्त्र के बाद के सभी ग्रन्थों में दो प्रकार के संगीत का वर्णन मिलता है जिसमें से प्रथम मार्ग तथा द्वितीय देशी संगीत है। नाट्यशास्त्र में वर्णित संगीत तथा मुख्यरूप से तालों के अन्य ग्रन्थों में प्रथम श्रेणी के संगीत के अन्तर्गत रखा गया है।

दामोदर पं0 कृत संगीत दर्पण मे उदधतृ किया गया है कि:–

गीतं वाद्यं नर्तनच त्रयं संगीतमुच्यते। मार्ग देशी विभागेन संगीत द्विविधंमतम।।[15]

अर्थात् गीत, वाद्य तथा नृत्य, इन तीनों कलाओं का समुदाय वाचक नाम संगीत है। मार्गी तथा देशी संगीत के ये दो भेद माने गये है।

ब्रम्हा जी के जिस संगीत में शोधकर भरतमुनि ने महादेव जी के सामने जिसका प्रयोग किया तथा जो मुक्ति दायक है वह मार्ग संगीत कहलाता है।

तत्र देशस्थया रीत्या यत्स्यात् लोकानुरंजकम्।
देशे दशेते॒ संगीतं तथैशी त्यौमधीयते॑ ।[16]

जो संगीत देश के भिन्न भागों में वहाँ के प्रचलित व्यवहार के अनुसार जनता का मनोरंजन करता है वह देशी संगीत कहलाता है।

देशेषु देशेषु नरेश्रराणां वन्युण्जिनानामपि वर्ततेन्या।
गीत च वाद्यं च तथा च तत्वं 'नृत्य' देशीति नाम्ना परिकीर्तिता।[17]
इसी प्रकार संगीत रत्नाकर में देशी।[18]

ताल दो प्रकार का कहा गया है। प्रथम–मार्ग, द्वितीय मार्गताल के अन्तर्गत पाँच तालें– चचं त्पुट, चाचपुट आदि बतायी गयी है। तथा उनकी क्रियाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। तथा देशी ताल के अन्तर्गत 120 तालों के लक्षण सहित वर्णन किया गया है।

सगींत समयसार में देशी ताल की ओर सकेतं करते हुए इस प्रकार कहा गया है:–

अथ देशीगता मार्गी वक्ष्यन्ते लक्ष्य सम्मवतः
संगीत समयसार–8/19

अर्थात् लक्ष्य के अनुसार देशी सम्बद्ध मार्ग कहते हैं। संगीत समयसार, संगीत चूड़ामणि तथा संगीत रत्नाकार में नाट्यशास्त्र की भांति ही नाम तथा लक्षण का वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र19 में कला के काल को प्रमाण कहते है और यह ताल चतस्त्र और तिस्त्र भेद से अनेक प्रकार का होता है। इसे चंचत्पुट और चाचपुट जानना चाहिए। चंचत्पुट और चाचपुट को योनि रूप में प्रतिष्ठित करके इससे षटपितापुत्रक, समपक्वेष्टाक और उधट्ट आदि तालें गुरू और लघु की सहायता से वर्णित की गयी है। चंचत्पुट और चाचपुट तालें ही वर्तमान तालों के कृत्रिक विकास का आधार बनी। नाट्यशास्त्र तथा संगीतरत्नाकर दानो ही ग्रन्थों में चतुस्त्र शब्द इन तालों की प्रकृति का बोध कराती है। जिनकी सम्पूर्ण कलावधि (कला या गरुु सदं र्भ म) चार है या चार से गुणा करने पर चार आठ और सोलह हो जाती है। तिस्त्र शब्द के अन्तर्गत उन तालों को उदघटित करना है, जिनकी (कला या गुरू संख्या) तीन कला होती है। यद्यपि 12,24,96 का अंक 4 से भी गुणित होता है। इसी प्रकार नाट्यशास्त्र में20 मिस्त्र शब्द मिले हुए के अर्थ में उदघृत हुआ है। जिसमें चतस्त्र और तिस्त्र तालों के सम्मिलन से जो ताल बनते हैं वह मिस्त्र ताल के अन्तर्गत आते हैं। 'खण्ड' शब्द संगीतरत्नाकर में देशी ताल के सन्दर्भ में उल्लिखित हुआ है।[21] इन देशी आदि तालों का चाचपुट आदि तालों से उद्भव हुआ है। उदाहरण के लिए प्रतिमधा ताल– ।।••।। जो कि चचत्पुट से लिया गया प्रतीत हाते है। सगीं तरत्नाकर में उदधृत "संकीर्ण" शब्द तथा नाट्यशास्त्र पर अभिनव गुप्त की टीका के इक्तीसवां अध्याय है। यद्यपि अभिनव गुप्त की टीका भरतकृत नाट्यशास्त्र में कुछ विसंगतियाँ हैं। फिर भी 'संकीर्ण' शब्द

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- III, Issues-25, YEAR- July-Sept.-2022

से आशय उन तालों से स्पष्ट किया गया है जो चतस्त्र और तिस्त्र तालों के अन्तर्गत नहीं आते। नाट्यशास्त्र में ताल के 10 प्राणों का उल्लेख नहीं किया गया है किन्तु बाद में ग्रन्थों में ताल की व्याख्या को स्पष्टता की ओर अग्रसर करने के लिये शास्त्रों में ''ताल के 10 प्राण'' का वर्णन तो किया गया है। किन्तु 'ताल के 10 प्राण शीर्षक के अन्तर्गत इसका वर्णन या उल्लेख नहीं किया गया है। नाट्यशास्त्र में ताल के तत्वों की विवेचना करते हुए यति, पाणि और लय में ताल के अग्रभूत अवयव कहे गये है। नाट्यशास्त्र, संगीतरत्नाकर, संगीत समयसार आदि ग्रन्थों में 'ताल' के तत्वों की विवेचना तो की गयी है किन्तु ''ताल के दस प्राण'' या ताल के तत्व इत्यादि संज्ञाओं का उल्लेख नहीं किया गया है। सगं ीत चडू ामणि में ''अथताल प्राण'' इस प्रकार का उल्लेख है किन्तु ताल के प्राणों और तत्वों की विवेचना नहीं की गयी है। ताल के 10 प्राणों का स्पष्ट उल्लेख रस कौमुदी, संगीत दर्पण, संगीत मकरन्द, ताल छन्द आदि ग्रन्थों में किया गया है:–

कालो मार्गः क्रियांगनि गृहो जातिः कलाः लयः
यति प्रस्तार कश्चेति ताल प्राण दस स्मृताः।।[22]

रस कौमुदी में ताल के 10 प्राण के विषय में इस प्रकार कहा गया है:

काले मार्गः क्रियांगनिगृहो जातिः कलाः लयः
यति प्रस्तार इत्मुक्तिस्तालौं प्राण दस क्रमताः।।'

संगीत में–ताल ही यथार्थत्ः स्वरों को गति प्रदान करते हैं। ''ताल'' संगीत को एक निश्चित नियम या समय के बंध ान में बाँधता है। जिस प्रकार जीवन में निश्चित समय चक्र तथा सुख–समृद्धि का अभाव है, उसी प्रकार तालहीन विश्रृंखल संगीत में सार्थकता नहीं 'ताल' संगीत में विभिन्न सौन्दर्यपूर्ण चलनशैलियों का विकास करता है, उससे संगीत के संयम की रक्षा होती है। निश्चित ताल–गति के फलस्वरूप ही संगीत के क्रमिक आरोह, अवरोह, विराम आदि अत्यंत प्रभावोत्पादक हो जाते है। तालों में गति–भेद उत्पन्न कर रस निष्पत्ति संभव होती है। करूण, श्रृंगार, रौद्र, वीभत्स आदि रसों के लिये तालों की विभिन्न गतियों का बड़ा कि जिस प्रकार देह में प्रधान ''मखु महत्व है। ''नारदार्थ– रागमाला'' में कहा है ा'' है और मुख में ''नासिका''उसी प्रकार ताल–विहीन संगीत नासिकाविहीन मुख के समान है गीत, वाद्य एवं नृत्य की तुलना मदमत्त हाथी से कर, ताल को अंकुश की उपमा दी गई है। जिस प्रकार बिना पतवार के नाव होती है, वैसे ही तालविहीन संगीत होता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 13 सितम्बर 1981,2012.
2. शारंगदेव 'संगीत रत्नाकर' प्रथम, स्वर गताध्याय, प्रथमं प्रकरणं, श्लोक 21 पृ0 13.
3. दामोदर पंडित 'संगीत दर्पण' श्लोक 3, पृ0 5.
4. जायसवाल, राधेश्याम, 'भारतीय सुषिरवाद्यों का इतिहास पृ0 81.
5. संगीत रत्नाकर (5/2) एवं संगीतसूर्योदय (तालाध्याय/46).
6. (संगीत रत्नाकर–ताल अध्याय कल्लिनाथ और सिंह भूपाल की टीका)।
7. संगीत समयसार–पार्श्वदेव–कुन्द–कुन्द भारती दिल्ली प्रकाशन 8/2.
8. वालिया, डेजी, 'निराला की संगीत साधना,' पृ0 85.
9. निराला ग्रन्थावली : 2,' आवाहन,' पृ0 94.
10. श्रीवास्तव, धर्मावती, 'प्राचीन भारत में 'संगीत' पृ069.
11. 'संगीत' दिस0 1989 पृ0 8.
12. Pingle, BA. History of Indian Music Pag. No. 65.
13. संगीत चूड़ामणि, जगदेकलल्ल, गायक वाड़ श्लोक सं0 43.
14. (संगीत समयसार पार्श्वदेव–कुन्दकुन्द भारती प्रकाशन)।
15. संगीत दर्पण दामोदर प0ं 16.
16. संगीत दर्पण दामोदर प0ं श्लोक सं0 3 श्लोक सं0– 4–5.
17. संगीत चूड़ामणि, जगदेकमल्ल, श्लोक सं0–3.
18. संगीत रत्नाकार–शारगं देव–चौखम्भा सस्ंकरण 3/5/4/–17,3/5/311.
19. नाट्यशास्त्र– भरतकृत – चौखम्भा सं0 31/17.

*****